अध्यात्म ज्ञान एवं चिन्तन संस्था
(SOCIETY FOR ADHYATMA STUDIES)

17, सिविल लाइन्स, कमिश्नर ऑफिस के सामने, मुरादाबाद – 244001
मो0 9412241221

ब्रह्म ज्ञान विचार गोष्ठी –

17.06.2012

व

15.07.2012

"श्रीमद् भगवद् गीता"
नवम अध्याय
"राजविद्याराजगुह्य योग"

निवेदक

डॉ0 यू0 के0 शाह
शाह नर्सिंग होम,
सिविल लाइन्स, मुरादाबाद
फोन नं0 9359716440

रविन्द्र नाथ कत्याल
अमर बसेरा,
सिविल लाइन्स, मुरादाबाद
फोन नं0 9837041945

सुधीर गुप्ता, एडवोकेट
17, सिविल लाइन्स,
मुरादाबाद
फोन नं0 9412241221

श्रीमद् भगवद् गीता
अध्याय – 9
"राजविद्याराजगुह्य योग"

श्रीभगवान उवाच–

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।। 1।।

श्रीभगवान ने कहा–
हे अर्जुन! क्योंकि तुम दोषदृष्टि रहित हो अतः इस परम गोपनीय ज्ञान–विज्ञान को बताऊंगा जिसे जानकर तुम संसार के दुखों से मुक्त हो जाओगे।

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रम् इदम् उत्तमम्।
प्रत्यक्ष अवगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुम् अव्ययम्।। 2।।

यह ज्ञान सब विद्याओं में श्रेष्ठ है और सभी रहस्यों में सर्वाधिक गोपनीय है, यह अति पवित्र और उत्तम है, यह प्रत्यक्ष अनुभूति कराने वाला है, और धर्मयुक्त है, यह सुगम रुप से सुखपूर्वक किया जाने वाला है और अविनाशी है।

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि।। 3।।

हे शत्रुहंता! इस धर्म में श्रद्धारहित पुरुष मुझको प्राप्त न होकर मृत्युरुपी संसार चक्र में भ्रमण करते रहते हैं।

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेषु अवस्थितः।। 4।।

मैं अव्यक्त रुप से समस्त जगत में व्याप्त हूं। समस्त जीव मुझसे स्थित हैं परन्तु मैं उनसे नहीं हूं।

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगम् ऐश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः।। 5।।

मेरे आश्रित रहते हुये भी जीव मेरी इस माया को नहीं देख पाते कि मैं सब जीवों का उत्पन्न करने वाला, पालन करने वाला और उनमें अवस्थित होते हुये भी इस विराट जगत का अंश नहीं हूं।

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानि इति उपधारय।। 6।।

इस प्रकार जानो कि जैसे आकाश से उत्पन्न हुआ सर्वत्र विचरने वाला प्रबल वायु सदा ही आकाश में रहता है वैसे ही मेरे संकल्प द्वारा उत्पन्न होने वाले सम्पूर्ण भूत मुझमें स्थित रहते हैं।

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजामि अहम्।। 7।।

हे अर्जुन! कल्प के अंत में सब भूत मेरी प्रकृति में लय हो जाते हैं और कल्प के आदि में उनको मैं पुनः उत्पन्न करता हूं।

प्रकृतिं स्वाम् अवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।
भूतग्राममिमं कृत्स्नम् अवशं प्रकृतेः वशात्।। 8।।

सम्पूर्ण विराट जगत मेरे अधीन है। यह मेरी माया के वशीभूत होकर बार–बार स्वतः प्रकट होता रहता है और विनष्ट होता रहता है।

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय।
उदासीनवत् आसीनम् असक्तं तेषु कर्मसु।। 9।।

परन्तु हे अर्जुन! यह सारे कर्म मुझे नहीं बांधते हैं। मै उदासीन की भांति इन सारे कर्मों से विरक्त रहता हूं।

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगत् विपरिवर्तते।। 10।।

हे कुन्ती पुत्र! मेरे अधीन प्रकृति इस सम्पूर्ण चराचर जगत को रचती है। और इस हेतु से यह जगत आवागमन के चक्र में घूमता रहता है।

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावम् अजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्।। 11।।

सम्पूर्ण भूतों के महान ईश्वर रुप मेरे परम भाव को न जानने वाले मूढ लोग मेरे मनुष्य का शरीर धारण करके अवतरित होने पर मुझे साधारण मनुष्य मानते हैं।

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः।। 12।।

जो लोग उपरोक्त प्रकार मोह ग्रस्त होते हैं वे आसुरी और नास्तिक स्वभाव के प्रति आकृष्ट रहते हैं। इस मोह ग्रस्त अवस्था में उनकी मुक्ति की आशा, उनके कर्म और ज्ञान सभी निष्फल हो जाते हैं।

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्ति अनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिम् अव्ययम्।। 13।।

परन्तु हे कुन्ती पुत्र! दैवीय प्रकृति के आश्रित हुये महात्माजन मेरे को सब भूतों का सनातन कारण और नाशरहित अक्षर स्वरुप जानकर अनन्य मन से युक्त होकर मुझे प्राप्त करते हैं।

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तः च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते।। 14।।

और वे दृढ निश्चय वाले व्यक्ति निरन्तर मेरे नाम का कीर्तन करते हुये तथा मुझे प्राप्त करने के लिये यत्न करते हुये और मुझे बारम्बार प्रणाम करते हुये सदा मेरे ध्यान में युक्त हुये अनन्य भक्ति से मेरी उपासना करते हैं।

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्।। 15।।

उनमे से कोई तो मुझ विराट स्वरुप ईश्वर को ज्ञान यज्ञ के द्वारा पूजा करते हैं और कोई एकत्व भाव से (अर्थात जो कुछ है सब ईश्वर ही है ईश्वर के अलावा और कुछ नहीं है इस भाव से) उपासना करते हैं और कोई पृथक भाव से अर्थात स्वामी–सेवक भाव से उपासना करते हैं और कोई अन्य बहुत प्रकार से भी उपासना करते हैं।

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधा अहम् अहमौषधम्।
मन्त्रोऽहम् अहमेवाज्यम् अहमग्निः अहं हुतम्।। 16।।

मैं ही करने योग्य कर्म हूं, मैं ही यज्ञ हूं, मैं ही स्वधा हूं, मैं ही औषधि अर्थात सब वनस्पतियां हूं, मैं ही मंत्र हूं, मैं ही धृत हूं, मैं ही अग्नि हूं और मैं ही हवन क्रिया हूं।

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च।। 17।।

मैं ही इस सम्पूर्ण जगत का पिता हूं, माता हूं, पितामह हूं और पोषण करने वाला हूं। मैं ही जानने योग्य पवित्र ओंकार हूं, मैं ही ऋग्वेद हूं, मैं ही सामवेद हूं और यजुर्वेद भी मैं ही हूं।

गतिर्भर्ताप्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्।। 18।।

मैं ही प्राप्त होने योग्य लक्ष्य हूं, मैं ही भरण–पोषण करने वाला सबका स्वामी प्रभु हूं, मैं ही शुभ–अशुभ को देखने वाला साक्षी हूं, मैं ही सबका निवास स्थान हूं, मैं ही शरण लेने योग्य हूं, मैं ही सुहृद हूं (प्रति–उपकार न चाहकर हित करने वाला), मैं ही उत्पत्ति और प्रलय करने वाला सबका आधार, आश्रय और अविनाशी बीज हूं।

तपामि अहमहं वर्षं निगृह्णामि उत्सृजामि च।
अमृतंचैव मृत्युश्च सदसत् चाहमर्जुन।। 19।।

हे अर्जुन! मैं ही ताप देने वाला हूं, मैं ही वर्षा को रोकने वाला तथा बरसाने वाला हूं, मैं ही अमृत और मृत्यु हूं और मैं ही सत् और असत् हूं।

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्टवा स्वः गतिम् प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकम् अश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान्।। 20।।

तीन विद्याओं (तीन वेदों ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद) के ज्ञाता (त्रिवेदी) तथा सोमरस का पान करने वाले, पापों से पवित्र हुये जो व्यक्ति यज्ञों के द्वारा मेरी पूजा करके स्वर्ग की प्राप्ति के लिये प्रार्थना करते हैं, वे व्यक्ति अपने पुण्यों के फलस्वरुप इन्द्र लोक को प्राप्त कर स्वर्ग में दिव्य देवताओं के भोगों को भोगते हैं।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्मम् अनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते।। 21।।

वे व्यक्ति उस विशाल स्वर्ग लोक को भोग कर पुण्य क्षीण होने पर मृत्यु लोक को प्राप्त होते हैं। और इस प्रकार स्वर्ग के साधन रुप तीनो वेदो में कहे हुये सकाम कर्मों के पालन करने वाले और भोगों की कामना करने वाले, वे बारम्बार मृत्यु तथा जन्म को प्राप्त करते हैं।

अनन्याः चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।। 22।।

और जो अनन्य भाव से मेरे में स्थित हुये जन मुझे निरन्तर चिन्तन करते हुये निष्काम भाव से उपासना करते हैं उन नित्ययुक्त व्यक्तियों के योगक्षेम मैं वहन करता हूं अर्थात उनकी आवश्यकताओं को मैं पूरा करता हूं और जो कुछ उनके पास है उसकी रक्षा करता हूं।

येऽपि अन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्ति अविधिपूर्वकम्।। 23।।

हे कुन्ती पुत्र! जो श्रद्धा से युक्त भक्तगण अन्य देवताओं की पूजा करते हैं वे भी अविधिपूर्वक मेरी ही पूजा करते हैं।

अहं हि सर्वज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेन अतः च्यवन्ति ते।। 24।।

मैं ही समस्त यज्ञों का भोक्ता और स्वामी हूं परन्तु जो व्यक्ति मुझे तत्व से नहीं जानते हैं वे इसी कारण नीचे गिरते हैं अर्थात पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं।

यान्ति देवव्रता देवान् पितृन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मत् आजिनोऽपि माम्।। 25।।

जो देवताओं की पूजा करते हैं वे देवताओं को प्राप्त होते हैं। पितरों को पूजने वाले पितरों को प्राप्त होते हैं। भूतों को पूजने वाले भूतों को प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त मुझको ही प्राप्त होते हैं।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्ति उपहृतम् अश्नामि प्रयतात्मनः।। 26।।

यदि कोई निष्काम भक्त भक्तिपूर्वक पत्र, पुष्प, फल, जल आदि मुझे अर्पण करता है तब उस शुद्ध बुद्धि भक्त का प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र, पुष्प आदि मैं स्वीकार करता हूं।

यत्करोषि यत् अश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत् तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।। 27।।

हे अर्जुन! तुम जो कुछ कर्म करते हो, जो कुछ खाते हो, जो कुछ हवन करते हो, जो कुछ दान देते हो और जो कुछ तपस्या करते हो वह सब मुझे अर्पण करते हुये करो।

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो माम् उपैष्यसि।। 28।।

इस प्रकार कर्मों को मुझे अर्पण करने रुपी सन्यास योग से युक्त हुये मन वाले तुम कर्मों के शुभ और अशुभ फल रुप बंधनो से मुक्त हो जाओगे और मुझे प्राप्त करोगे।

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।। 29।।

मैं सब जीवों के लिये समभाव हूं, मेरा न कोई प्रिय है और न कोई अप्रिय है परन्तु जो मुझे भक्तिपूर्वक भजते हैं वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें हूं।

अपि चेत् सुदुराचारो भजते माम् अनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यक् व्यवसितो हि सः।। 30।।

यदि कोई अति दुराचारी भी अनन्य भाव से मुझको निरन्तर भजता है वह साधु ही माने जाने योग्य है क्योंकि वह पूर्णतः निश्चय वाला है अर्थात उसने भली प्रकार निश्चय कर लिया है कि ईश्वर के भजन के समान अन्य कुछ भी नहीं है।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वत् शान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि नमे भक्तः प्रणश्यति।। 31।।

ऐसा व्यक्ति शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और शाश्वत शान्ति को प्राप्त होता है। हे अर्जन! तुम निश्चयपूर्वक जानो कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।

मां हि पार्थ व्यप आश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्याः तथा शूद्राः तेऽपि यान्ति परां गतिम्।। 32।।

हे अर्जुन! जो लोग मेरी शरण ग्रहण करते हैं वे पापयोनी वाले स्त्री, वैश्य तथा शूद्र भी क्यों न हों, परम गति को प्राप्त होते हैं।

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।। 33।।

फिर पुण्यशील, ब्राह्मण, राजऋषि, भक्तजन का तो कहना ही क्या है। अतः इस सुखरहित क्षणभंगुर लोक में आकर निरन्तर मेरा ही भजन करो।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेव एष्यसि युक्त्वा एवम् आत्मानं मत्परायणः।। 34।।

अपने मन को मेरे नित्य चिन्तन में लगाओ, मेरे भक्त बनो, मेरी पूजा करो, मुझे नमस्कार करो। इस प्रकार मुझमें पूर्णतः तल्लीन होने पर तुम निश्चित रुप से मुझको ही प्राप्त करोगे।

।। इति नवमोऽध्याय।।